EDUZONE: International Peer Reviewed/Refereed Multidisciplinary Journal (EIPRMJ), ISSN: 2319-5045
Volume 12, Issue 1, January-June, 2023, Available online at: www.eduzonejournal.com

भू–प्रदान एवं भूमि अनुदान का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. राकेश कुमार

सहायक प्रोफेसर (इतिहास), जी.सी.डब्ल्यू. रोहतक

शोध सारः–

प्राचीन भारतीय समाज जो धीरे–धीरे मध्यकालीन समाज में बदला, उसका मूल कारण था भूमि अनुदान की प्रथा। यह प्रथा कैसे आरम्भ हुई? भूमि अनुदान के शासन पत्र (सनद) बताते हैं कि दाताओं, मुख्यतः भिक्षुओं और पुरोहितों को धार्मिक अनुष्ठानों के लिए संसाधन की आवश्यकता रहती थी। राजा के अधिकारी वैश्यों से जो कर वसूलते थे उससे वे अपने अधिकारियों और श्रमिकों का वेतन चुकाते थे, पुरोहितों को दान–दक्षिणा देते थे और शिल्पियों से खरीदते थे।

भूमि अनुदान की प्रथा ईसा की पाँचवी सदी से तेजी पकड़ती गई। इस प्रथा के अनुसार ब्राह्मणों को सारे कर चुकाने की छूट के साथ भूमि दी जाती थी। गाँवों से राजा जितने भी करों की उगाही करता था उन सबों की उगाही का अधिकार ब्राह्मणों को मिल जाता था। इसके अलावा अनुदान–ग्रामों में बसने वाले लोगों पर शासन करने का अधिकार भी दानग्राही पाते थे। सरकारी अधिकारियों और राजा के परिचरों को दान किए गए गाँवों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी।

ईसा की पाँचवी सदी तक चोरों को सजा देने का अधिकार राजा सामान्यतः अपने ही हाथ में रखता था, परन्तु बाद में सभी प्रकार के अपराधियों को सजा देने का अधिकार दानग्रहियों को दिया जाने लगा। इस प्रकार दानग्रही ब्राह्मण किसानों और शिल्पियों से करों की वसूली करने के साथ–साथ अपने गांव में शान्ति व्यवस्था का काम भी करने लगे।

अधिकारियों को वेतन के बदले भूमि देने की प्रथा ने राज्य नियंत्रित क्षेत्र को संकुचित कर दिया। मौर्यकाल में छोटे से बड़े तक सभी अधिकारियों को वेतन सामान्यतः नकद चुकाया जाता था। यह प्रणाली कुषाणों के अमल में भी चलती रही, जिन्होंने भारी संख्या में ताँबे और सोने के सिक्के जारी किए। यही प्रथा किसी न किसी तरह गुप्तकाल में भी चलती गई, जिन्होंने स्वर्ण–मुद्राएँ स्पष्टतः सेना और उच्च अधिकारियों को वेतन चुकाने के उद्देश्य से ढलाई थी। लेकिन ऐसा लगता है कि छठी सदी में स्थिति बदल गई । उस सदी की स्मृतियों में कहा गया है कि वेतन के बदले भूमि दी जा सकती है।

कृषि अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया। ये भूस्वामी न खुद अपनी जमीन आबाद कर सकते थे और न ही कर की वसूली कर सकते थे। असल में खेती का काम उन किसानों या बटाईदारों को सौंपा जाता था जो जमीन से जुड़े तो थे पर कानूनन वे उसके हकदान नहीं थे। चीनी यात्री इत्सिंग ने कहा है कि अधिकांश बौद्ध विहार अपने नौकर–चाकर से खेती कराते थे। हवेनसांग ने शूद्रो को कृषक बतलाया है, इससे यह ज्ञात होता है कि शूद्र दासों या कृषि–मजदूरों के रूप में खेती का काम करना छोड़ रहे थे, शायद उनका अस्थायी तौर पर जमीन पर कब्जा हो रहा था। ऐसा उत्तर भारत की पुरानी बस्तियों में हुआ होगा।

शहरी केन्द्रों का पतनः–

ईसा की छठी सदी से व्यापार का ह्रास होने लगा। पश्चिमी रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार तीसरी सदी में ही समाप्त हो गया था तथा ईरान और बायजेंटियम के साथ रेश्म का व्यापार छठी सदी के मध्य में आकर बन्द हो

गया। भारत का चीन और दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ कुछ–कुछ व्यापार चलता था, परन्तु इसका लाभ अरब लोगों के हाथ में चला जाता था जो बिचौलिए का काम करते थे।

इस्लाम के उदय होने के पूर्व काल में अरब लोगों ने वास्तव में भारत के निर्यात व्यापार को लगभग पूरा–पूरा हथिया लिया था। छठी सदी के बाद लगभग 300 वर्षों से भी अधिक समय तक व्यापार पतनावस्था में रहा। इस बात का प्रबल प्रमाण है– देश में स्वर्ण मुद्राओं का लगभग पूरा–पूरा गायब हो जाना। इस अविध में सिक्कों की कमी उत्तर भारत में ही नहीं, दक्षिण भारत में भी दिखाई देती है।

व्यापार का ह्रास से नगरों के बुरे दिन आए। नगरों के उत्थान दकन, पश्चिम और उत्तर भारत में सातवाहनों और कुषाणों के राज्यकाल में हुआ। कुछ नगर गुप्तकाल में तो फलते फूलते रहे, लेकिन गुप्तोचर काल में उत्तर भारत के बहुत–सारे पुराने वाणिज्य नगर उजाड़ हो गए। उत्खननों से पता चलता है कि हरियाणा और पूर्वी पंजाब के कई नगर, पुराना किला (दिल्ली), मथुरा, हस्तिनापुर (जिला मेरठ), श्रावस्ती (उत्तर प्रदेश), कौशाम्बी (इस्लामाबाद के निकट) राजघाट (जिला मेरठ), श्रावस्ती (उत्तर प्रदेश), कौशाम्बी (इस्लामाबाद के निकट) राजघाट (वाराणसी), चिरान्द (सारन जिला) वैशाली और पाटलिपुत्र गुप्तकाल में ही पतनोन्मुख हो गए थे और गुप्तोचर काल में ही अधिकांश लुप्त हो गए।

चीनी यात्री ह्वनेसांग ने बुद्ध के जीवन से सम्बद्ध कई पुण्य–नगरों में भ्रमण किया तो देखा कि वे या तो उजड़ गए या टूटे–फूटे हैं। भारत के माल के लिए विदेशों में बहुत कम बाजार रह गया, इसलिए इन नगरों में रहने वाले शिल्पी और वणिक लोग देहात चले गए और वहाँ खेती करने लगे। पाँचवी सदी के उत्तरार्द्ध में रेशम बुनकरों की एक टोली पश्चिम समुद्रतट को छोड़कर मालवा के मन्दसौर में आ बसी और वहाँ रेशम की बुनाई छोड़कर दूसरे पेशे को अपनाया।

भारतीय सामन्तवादः– पूर्व मध्यकालीन समाज का बहुचर्चित विषय 'सामन्तवाद' रहा है जिसके उद्भव तथा विकास पर आधुनिक युग के अनेक सामाजिक–आर्थिक इतिहासकारों ने अपने विचार प्रकट किए हैं। 'सामन्त' शब्द का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'स्वतंत्र पड़ोसी' के अर्थ में किया गया है। सर्वप्रथम (प्रथम शती) ने बुद्धचरित में इस शब्द का प्रयोग जागीरदार के लिए किया है। गुप्तकाल से सामन्त शब्द का प्रयोग सामान्यतः इसी अर्थ में किया जाने लगा।

सामन्तवाद का अंकुरण शक–कुषाण काल में हुआ तथा राजपूत काल तक आते–आते यह समाज में पूर्णतया प्रतिष्ठित हो गया।

भारत में सामन्तवाद के उद्भव तथा विकास के लिए राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों ने उपयुक्त आधार प्रदान किया। बाह्य आक्रमणों के काराण केन्द्रीय सत्ता निर्बल पड़ गई तथा चतुर्दिक अराजकता एवं अव्यवस्था फैल गई। केन्द्रीय शक्ति की निर्बलता ने समाज में प्रभावशाली व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग तैयार किया जिन पर स्थानीय सुरक्षा का भार आ पड़ा। अव्यवस्था के युग में सामान्यजन अपनी जान–माल की सुरक्षा के लिए उनकी ओर उन्मुख हुआ। उल्लेखनीय है कि इन्हीं परिस्थितियों में मध्यकालीन यूरोप में भी सामन्तवाद का अभ्युदय हुआ था। अरबों तथा तुर्कों के आक्रमण ने शक्तिशाली राजवंशों को धराशाई कर दिया। फलस्वरूप उत्तर भारत में कई छोटे–छोटे राजवंशों का उदय हो गया। इससे सामन्ती प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला।

गुप्त सम्राटों की धर्मविजयी नीति के फलस्वरूप उत्तर भारत में विभिन्न सामन्त कुलो; जैसे–मोखरि, परिव्राजक, सनकानीक, वर्मन, मैत्रक आदि का उदय हुआ। इन वंशों के शासक महाराज की उपाधि धारण करते थे जबकि गुप्त सम्राट को महाराजाधिराज कहा जाता था। बाण के हर्षचरित में चर्चा हुई है। जहाँ बताया गया है कि हर्ष ने अपने महासामन्तों को अपना करद (कर देने वाला) बना लिया था (करदीकृत महासामन्त) सम्राट अधीन

राजाओं की प्रजा से कर न लेकर उन सामन्तों से ही लेता था। गुप्तकाल तथा उसके बाद में शासकों की विजय का उद्देश्य अधिक से अधिक सामन्त शासक तैयार कर उनसे करादि बटोरना हो गया। इस प्रवृत्ति ने भी सामन्तवा को प्रोत्साहित किया।

राजपूत काल में सामन्तों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई। चाहमान शासक पृथ्वीराज के अधीन 150, कलचुरि कर्ण के अधीन 136 तथा चालुक्य कुमारपाल के अधीन 72 सामन्तों पर ही शासन करते थे, न कि अपनी प्रजा के ऊपर। सामन्तों का प्रशासन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव था। सामन्तों के प्रभाव के कारण शासक अपने मन्त्रियों की सलाह की भी उपेक्षा कर बैठते थे। बारहवीं शताब्दी में लिखित ग्रंथों में सामन्तों तथा राज्याधिकारों को वेतन के रूप में भूमिखण्ड दिए जाने के सिद्धांत का समर्थन किया गया है। इसके पहले के साहित्य में अधिकांशतः धार्मिक कार्यों के लिए ही अनुदानस्वरूप भूमि दिए जाने का वर्णन मिलता है। किन्तु पूर्व मध्य युग में स्थिति इससे भिन्न है।

निष्कर्षः–

प्राचीन भारतीय समाज जो धीरे–धीरे मध्यकालीन समाज में बदला उसका प्रमुख कारण था, भूमि अनुादन की प्रया जो भूमि को दान देने की प्रथा शुरू हुई, उससे समाज में कई बडे बदलाव देखे गए। जो पत्र (सनदके रूप में दिए जाते हैं वे बताते हैं कि दाताओं, मुख्यतः राजाओं को धर्म या मोक्ष प्राप्ति की कामना रहती थी। दान प्राप्त कर्त्ता मुख्य रूप से भिक्षु व ब्राह्मण थे। यह वर्ग धन प्राप्त करके दाता के लिए अर्चना–पूजा करता था। इस प्रकार की भूमि सारे करों से रहित होती थी। उनमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप शासक वर्ग द्वारा नहीं किया जाता था। इन सभी कारणों की वजह से कृषि अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। गुप्तकाल के बाद के शासकों की विजय का उद्देश्य अधिक से अधिक सामन्त शासक तैयार कर, उनसे कर आदि बटोरना हो गया। इस प्रवृत्ति के बल पर ही सामन्तवाद को प्रोत्साहन मिला।

संदर्भ ग्रंथः–

- भारतीय सामन्तवाद– रामशरण शर्मा
- समंतवाद– हरवंश मुखिया
- भारत में राज्य की उत्पत्ति– रामशरण शर्मा
- डोरा और निजाम के खिलाफ– थिरूमाली
- ेलंगाला में जमींदारों के प्रभुत्व का प्रकटीकरण– थिरूमाली
- अर्बन डेके इन इंडिया– रामशरण शर्मा
- प्राचीन भारत की संस्कृति व सभ्यता– दामोदर धर्मानंद कोसंबी।